9 संगीत के प्रमुख कलाकारों का परिचय व योगदान

QRickit

12152CH09

निसार हुसैन खान

निसार हुसैन खान रामपुर सहसवान घराने के एक प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक थे। इनका जन्म 12 दिसंबर 1860 ई. को फिदा हुसैन खाँ के यहाँ हुआ जो स्वयं एक प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक थे। इनकी प्रारंभिक संगीत की शिक्षा इनके पिता सदा हुसैन खाँ द्वारा दी गई। संगीत शिक्षण में कड़ी मेहनत के बाद निसार हुसैन खाँ अपने समय में महाराजा सयाजीराव गायकवाड तृतीय के यहाँ बड़ौदा में दरबारी संगीतकार नियुक्त हो गए। इन्हें अपने गुरुओं तथा पूर्वजों से सुप्रसिद्ध और अतुलनीय संगीत भंडार विरासत में मिला था। समय के अनुसार कड़ी मेहनत के प्रशिक्षण के बाद इनकी प्रसिद्धि होने लगी। गमक बोलतान तथा सरगम आदि में निसार हुसैन खाँ पारंगत थे। ख्याल की अपेक्षा इन्हें तराना गायकी में ज़्यादा प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इन्होंने ऑल इंडिया रेडियो पर भी प्रस्तुतियाँ दी हैं। एक अच्छे संगीत शिक्षक के रूप में इन्होंने अपने भतीजे राशिद खान एवं गुलाम मुस्तफा खान को भी संगीत शिक्षण प्रदान किया। सन 1970 ई. में इन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। जीवन के अंतिम दिन इन्होंने संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता में व्यतीत किए तथा 16 जुलाई 1993 ई. को उनका देहांत हो गया।

चित्र 9.1— निसार हुसैन खान

© NCERT not to be republished

अहमद जान थिरकवा

अहमद जान थिरकवा का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद में सन 1891 ई. में एक सांगीतिक परिवार में हुआ था। इनके पिता एक प्रसिद्ध सारंगी वादक थे जिनसे इन्होंने संगीत सीखना प्रारंभ किया था। अहमद जान थिरकवा के नाना काले खान, चाचा शेर खान व मामा फ़ैयाज खान थे जो कि स्वयं भी प्रसिद्ध संगीतकार थे। इन्होंने तबला वादन की शिक्षा उस्ताद मुनीर खान से प्राप्त की। इनके उपनाम (थिरकवा) के पीछे भी एक दिलचस्प कहानी है। जब यह छोटे थे तो इनकी उँगलियाँ ऐसे थिरका करती थीं जैसे कत्थक नृत्य प्रस्तुत किया जा रहा हो। तो यहीं से 'थिरक' शब्द की उत्पत्ति हुई। उस्ताद मुनीर खान के पिता उस्ताद काले खान ने जब इन्हें देखा तो इन्होंने अहमद की तबले पर नाचती उँगलियों से प्रभावित होकर इनका नाम 'थिरकवा' रख दिया था। तब से लेकर इनका नाम अहमद जान थिरकवा पड़ गया। ये तबला वादन के अद्भुत कलाकार व धनी प्रतिभा के व्यक्ति थे।

चित्र 9.2— अहमद जान थिरकवा

इनकी पहली प्रस्तुति 16 वर्ष की उम्र में खेतवाड़ी मुंबई में हुई थी जिसके उपरांत इन्हें उत्तर भारत में प्रसिद्धि मिलने लगी थी। सन 1936 ई. में यह रामपुर दरबार में दरबारी संगीतकार नियुक्त हुए थे। लगभग 30 वर्ष की कड़ी मेहनत के बाद यह लखनऊ के भातखंडे संगीत विश्वविद्यालय में तबला वादन के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। वैसे तो ये फर्रुखाबाद घराने के माने जाते हैं, लेकिन इन्होंने आगरा, जयपुर, ग्वालियर व पटियाला घराने से भी तबला वादन की शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें तबले के चारों पटो के तबलिए के रूप में जाना जाता है। तबला वादन में इन्होंने इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि लखनऊ, मेरठ, अजराड़ा, फर्रुखाबाद आदि घरानों के तकनीकी बाज इन्हें ऐसे ही याद थे। कठिन तालों को भी यह बड़ी सहजता और सुगमता से बजाते थे। इनके सोलो वादन के कई ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स आज भी उपलब्ध हैं। इनकी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य समुचित रूप से इनके पुत्रों व शिष्यों ने भी किया। इनके शिष्यों में पंडित प्रेम बल्लभ, पद्म भूषण निखिल घोष, सूर्यकांत गोखले, नारायण राव जोशी, सुधीर वर्मा व लालजी गोखले आदि कतिपय कलाकार उल्लेखनीय हैं। इन्हें भारत सरकार द्वारा 1954 ई. में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार तथा 1970 ई. में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। अहमद जान अपने जीवन के अंतिम दिनों में मुंबई चले गए, परंतु इनकी इच्छा थी कि इनकी अंतिम साँस लखनऊ में ही निकले। कुदरत का करिश्मा भी निराला है, मोहर्रम के समय उस्ताद जी लखनऊ आए हुए थे और तभी 13 जनवरी 1976 ई. को लखनऊ में ही इन्होंने अपनी अंतिम साँसें लीं।

© NCERT not to be republished

उस्ताद बिस्मिल्लाह खान

उस्ताद बिस्मिल्लाह खान का जन्म 21 मार्च 1916 ई. में डुमराव, बिहार में एक संगीत परिवार में हुआ था। इनके पिता पैगम्बर बख्श खान महाराजा केशव प्रसाद सिंह के दरबारी शहनाई वादक थे। इनका बचपन का नाम कमरूद्दीन खान था, पर इन्हें 'बिस्मिल्लाह' नाम इनके दादा रसूल बक्श ने दिया। जब यह 14 वर्ष के थे तब इन्होंने पहली बार इलाहाबाद संगीत परिषद में शहनाई वादन प्रस्तुत किया और अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया। फिर जैसे-जैसे दिन गुज़रते चले गए यह अपनी प्रतिभा का जाल बुनते चले गए। इसके उपरांत उस्ताद बिस्मिल्लाह खान दुनियाभर में अपनी प्रतिभा का प्रर्दशन करते रहे और भारत का नाम रोशन किया। इनका विवाह इनके मामू सादिक अली की दूसरी बेटी मुग्गम खानम के साथ मात्र 16 वर्ष की आयु में ही हो गया था। इनके पुत्र ज़मीर हुसैन, नदीम हुसैन, नैयर हुसैन, काज़िम हुसैन, मेहताब हुसैन और पुत्री सोना घोष (गोद ली हुई) हैं जो सभी शहनाई बजाते हैं। एक बार इन्हें विदेश में रहने तथा शहनाई सिखाने का अवसर प्राप्त हुआ, लेकिन उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि, 'वहाँ सब कुछ है लेकिन मेरे भारत की गंगा कहाँ से लाओगे।' इनके योगदान के विषय में उल्लेखनीय है कि 15 अगस्त 1947 ई. को देश की आज़ादी की पूर्व संध्या पर जब लाल किले पर आज़ादी का झंडा फहराया गया था, तब बिस्मिल्लाह खान ने ही शहनाई वादन कर इतिहास रचा था। 15 अगस्त 1947 ई. से लेकर जब तक वह जीवित रहे तब तक स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हर वर्ष लाल किले पर प्रधानमंत्री के भाषण के उपरांत उस्ताद बिस्मिल्लाह खान का शहनाई वादन प्रस्तुत किया जाता रहा। इन्होंने अनेक फिल्मों में, जैसे— *गूँज उठी शहनाई* (1994 ई.), *मेस्ट्रो चॉइस* (1959 ई.), *मेघमल्हार* (1994 ई.) इत्यादि के लिए संगीत की रचना की।

चित्र 9.3— उस्ताद बिस्मिल्लाह खान

सन 1956 ई. में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 1961 ई. में पद्म श्री, 1968 ई. में पद्म भूषण तथा 1980 ई. में पद्म विभूषण उपाधियों से सम्मानित किया गया था। सन 2001 में भारत सरकार द्वारा देश के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से भी इन्हें सम्मानित किया गया था। इन्हें बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा विश्व भारती विश्वविद्यालय शांति निकेतन द्वारा डॉक्टरेट की उपाधि भी प्रदान की गई। खान साहब ने कजरी, चैती, झूला जैसी लोक शैलियों से शहनाई वादन को जोड़ा और उन्हें एक नई पहचान दिलवाई। खान साहब ने अपने आखिरी दिनों में इंडिया गेट पर शहनाई बजाने की इच्छा प्रकट की थी, लेकिन 21 अगस्त 2006 ई. को खान साहब इस दुनिया से अलविदा कह गए। इनके सम्मान में इनके अंत काल के समय इनकी शहनाई भी इनके साथ दफ़न की गई। इनकी आवाज़ आज भी हम दूरदर्शन और आकाशवाणी की सिग्नेचर ट्यून के रूप में सुन सकते हैं।

उस्ताद बिस्मिल्लाह खान दुनिया के एक मशहूर शहनाई वादक हुए जिन्होंने भारतीय संगीत के क्षेत्र में अपना अद्वितीय योगदान दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने संगीत की दुनिया में शहनाई को एक अलग पहचान और सम्मान दिलवाया।

© NCERT not to be republished

पंडित कंठे महाराज

चित्र 9.4— पंडित कंठे महाराज

बनारस घराने के तबला वादक के रूप में कंठे महाराज का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनका जन्म 1880 ई. में वाराणसी के कबीर चौराहा मोहल्ला नामक स्थान पर एक संगीत परिवार में हुआ था। इनके पिता पंडित दिलीप मिश्र स्वयं एक प्रसिद्ध तबला वादक थे। कंठे महाराज ने संगीत की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की थी। उन्हें कुछ समय उपरांत पंडित बलदेव सहाय के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पंडित बलदेव सहाय उस समय नेपाल दरबार के संगीतकार थे। पंडित कंठे महाराज ने 23 वर्षों तक लगातार शिक्षा ग्रहण की। इसके साथ-साथ कोलकाता में रहकर अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए और नए-नए कीर्तिमान हासिल किए। यह लय और तिहाइयों को बहुत अधिक महत्व दिया करते थे। यह ऐसे प्रथम तबला वादक थे जिन्होंने तबला वादन द्वारा स्तुति प्रस्तुत की थी। इन्होंने अपने जीवन काल में विख्यात से विख्यात गायकों तथा वादकों को संगति प्रदान की थी। सन 1954 ई. में उन्होंने लगातार ढाई घंटे तबला बजाने का विश्व रिकॉर्ड भी स्थापित किया था। 'ना दिन-दिन ना' बोल का इनके द्वारा किया गया व्यवहार सबसे अधिक सौंदर्यात्मक था।

पंडित कंठे महाराज बड़े ही सरल व सजग स्वभाव के व्यक्ति थे। तबला वादन में उच्च कोटि का प्रदर्शन देने के कारण इन्हें सन 1961 ई. में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया था। 1 अगस्त 1970 ई. को 90 वर्ष की आयु में इनका देहांत हो गया था लेकिन वह अपने शिष्यों के रूप में बनारस बाज की परंपरा को हमेशा के लिए जीवित करके चले गए। इनके प्रमुख शिष्य बद्री महाराज, कृष्ण कुमार गांगुली, ननकू महाराज, आशुतोष भट्टाचार्य, राम नाथ मिश्र, किशन महाराज, सामता प्रसाद, गुदई महाराज, नन्हे सहाय तथा शीतल मिश्र इत्यादि रहे।

स्वामी पागल दास

हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण वाद्य जिसे हम पखावज के नाम से भी जानते हैं, उसके प्रमुख वादक स्वामी पागल दास हैं। ऐसा माना जाता है कि इसी वाद्य को लेकर वे पागल दास बने। वैसे इनका वास्तविक नाम स्वामी राम शंकर था। इनका जन्म 15 अगस्त 1920 ई. को उत्तर प्रदेश के देवरिया नामक जिले में हुआ। यह मात्र 13 से 14 वर्ष की आयु में ही घर छोड़कर अयोध्या आ गए थे और यहाँ आकर बंगाली बाबा नाम से प्रसिद्ध महंत राम किशन दास से संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। फिर हनुमानगढ़ी के बाबा रामसुखदास के यहाँ संगीत सीखने लगे और अपने जीवनयापन करने हेतु मंडलियों में हिस्सा लेने लगे। कुछ समय बाद यह बिहार की एक ड्रामा कंपनी से जुड़े और अपनी प्रतिभा का लगातार परिचय दिया। लेकिन स्वयं संतुष्ट ना होने के कारण पटना के प्रसिद्ध संगीतज्ञ नेपाल सिंह के शिष्यत्व में पाँच बरस तबला वादन

© NCERT not to be republished

सीखा। इसके उपरांत अयोध्या में बीस वर्षों तक कठोर तपस्या की और स्वामी भगवान दास ने, बाबा ठाकुर दास व गुरु राम मोहिनी की शरण में पखावज की शिक्षा ग्रहण की। पखावज में सिद्धहस्त होने के उपरांत उन्होंने तबला वादन में दक्षता हासिल करने की ठानी और संत शरण मस्त का शिष्यत्व ग्रहण कर तबला वादन व गायन सीखा। पखावज सीखने व सिखाने और बजाने की धुन के कारण इन्हें पागल दास के नाम से पुकारा जाने लगा। क्रमश: इसी नाम से ख्याति प्राप्त कर स्वामी पागल दास बन गए। इन्होंने देश भर में घूम-घूम कर पखावज वादन को शीर्ष ऊँचाइयाँ प्रदान की। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ताल संबंधी बहुत-से लेख लिखे। इनकी लिखित पुस्तकें *तबला प्रभाकर* (भाग दो) तथा *तबला कौमुदी* (भाग तीन) इत्यादि हैं। अनेक संस्थाओं द्वारा इन्हें सम्मानित किया गया जिसमें मुख्यतः अवध विश्वविद्यालय ने डी. लिट की उपाधि से सम्मानित किया था। इन्हें 1988 ई. में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। इन्हें मृदंग सम्राट, मृदंग मार्तंड, तबला शास्त्री, पखावज दास इत्यादि नामों से भी संबोधित किया जाता रहा। 1997 ई. में पागल दास हमेशा के लिए ब्रह्मांड में विलीन हो गए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्रोफेसर सीमा जोहरी ने 2007 में, इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर *पंडित राम शंकर दास स्वामी पागल दास जी* नामक पुस्तक भी लिखी।

चित्र 9.5— स्वामी पागल दास

पंडित कुमार गंधर्व

शास्त्रीय संगीत में गायन की चर्चा हो या लोक गायन की, कुमार गंधर्व जी का नाम सदैव ही संलग्न रहा। इनका जन्म 8 अप्रैल 1924 ई. को कर्नाटक राज्य के बेलगांव नामक जनपद में लिंगायत परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम शिव पुत्र सिद्ध रमैया कोमकलि था। इनके पिता का नाम सिद्धाराम स्वामी था जो स्वयं संगीत के ज्ञाता थे। सिद्ध रमैया कोमकली जी के बचपन के बारे में कहा जाता है कि ये जिन कलाकारों की गायकी एक बार सुन लिया करते थे, ठीक वैसे ही उसे तुरंत अपने माधुर्य कंठ से प्रस्तुत कर दिया करते थे। बचपन से ही इनके कंठ में प्रतिभा का सागर था। सन 1935 में मात्र 11 वर्ष की आयु में इन्होंने पहली बार इलाहाबाद के संगीत सम्मेलन में अपनी प्रस्तुति दी थी। वहाँ उन्हें खूब प्रसिद्धि भी मिली। इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और अनेक संगीत सम्मेलनो में भाग लिया। उन्होंने 1936 ई. में डॉक्टर बीआर देवघर के यहाँ संगीत शिक्षा हेतु प्रस्थान किया और उनसे गायन की बारीकियाँ सीखीं।

इन्होंने शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोक संगीत पर ज़्यादा बल दिया, क्योंकि इनका मानना था कि लोक संगीत ही शास्त्रीय संगीत का आधार है। इन्होंने राजस्थानी लोक संगीत पर शोध भी किया। इनकी विशेषता यह रही कि इन्होंने पुरानी चली आ रही जातीय परंपरा को छोड़ भारतीय संगीत की नई प्रवृति व प्रक्रिया को अपनाने की चेष्टा की और खुले विचारों के साथ

© NCERT not to be republished

संगीत प्रस्तुत किया। रूढ़िवादिता से परे शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत की या भजन संगीत की झलक दिखाने वाले संभवत: यह पहले गायक थे।

विवाह के उपरांत वह एक भयंकर रोग (क्षय रोग) से ग्रसित हो गए जिसके कारण इन्हें संगीत से दूरी रखनी पड़ी। कुछ समय पश्चात कुमार गंधर्व स्वस्थ हो गए और फिर अपनी संगीत की दुनिया में लौटे। इन्होंने अनेक रागों की रचना की, जैसे— लगन गंधार, मालवती, सहेली तोड़ी, संजारी, निदियारी, गांधी मल्हार, रात का मधवा, बीहड़ भैरव इत्यादि। इन्होंने अपने गुरु डॉक्टर बी.आर देवधर की परंपरा के साथ-साथ अब्दुल करीम खान एवं पंडित ओमकारनाथ ठाकुर की गायकी को भी अपने कंठ में उतारा है। यह एक संगीतज्ञ ही नहीं बल्कि एक अच्छे अन्वेषक भी रहे। इसलिए इन्होंने कबीर, तुलसी व मीरा जैसे कवियों की पदावलियों को चुनकर उन्हें रागों में आबद्धकर गाया। इनका कहना था कि "मैं हमेशा कुछ ना कुछ नया प्रयोग करने की फिराक में रहता हूँ।"

चित्र 9.6— कुमार गंधर्व

इनके द्वारा लिखित पुस्तक का नाम *अनूप राग विलास* है। 1977 ई. में इन्हें पद्म भूषण, 1985 ई. में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा कालिदास सम्मान तथा 1990 ई. में इन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण उपाधि से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने इनकी याद में वर्ष 2014 में डाक विभाग द्वारा एक डाक टिकट भी जारी किया था। इनका पहला विवाह 1946 ई. में भानुमति कंस के साथ हुआ जिनसे पहला बेटा मुकुल शिवपुत्र तथा दूसरा बेटा यशोवर्धन हुआ। लेकिन 1961 ई. में भानुमति के देहांत के बाद इन्होंने वसुन्धरा कोमकली से दूसरा विवाह किया। वह भी बहुत उच्च स्तर की गायिका थी। उनकी बेटी कलापिनी कोमकली हैं। 12 जनवरी 1992 ई. को मध्य प्रदेश में इनका देहांत हो गया, लेकिन भारतीय संगीत में कुमार गंधर्व का नाम हमेशा अमर रहेगा।

पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर

आधुनिक काल में भारतीय संगीत साधारण लोगों में रच-बस गया है जिसका श्रेय भारतीय संगीत में स्वर्गीय पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर को जाता है। इनका जन्म 18 अगस्त (श्रावण पूर्णिमा) 1872 ई. में राजपुरोहित वंश में करुन्दवाड़ के बेल गाँव नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम दिगंबर गोपाल था जो स्वयं संगीत ज्ञाता थे। इनकी माता का नाम गंगा देवी था। यह अपने परिवार का पालन-पोषण कीर्तन इत्यादि करके किया करते थे। यह इनकी वंश परंपरा में था। विष्णु दिगंबर बचपन से ही प्रखर बुद्धि के विद्यार्थी थे, लेकिन एक बार दीपावली के दिन आतिशबाजी जलाते समय इनकी आँखों में चिंगारी लग गई और इनकी आँखों की रोशनी चली गई। इसके बाद उन्होंने अपना ध्यान संगीत में लगाया और पूरी तरह संगीत के प्रति समर्पित हो गए। इनके पिता ने इन्हें ग्वालियर घराने के गुरु पंडित बालकृष्ण

© NCERT not to be republished

चित्र 9.7— पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर

बुआ इचलकरंजीकर के यहाँ शिष्य के रूप में भेज दिया और संगीत की शिक्षा दिलवाई। दशकों की तपस्या के बाद यह भारत भ्रमण के लिए निकले जिससे यह संगीत का प्रचार-प्रसार कर सकें। लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने महसूस किया कि संगीत और संगीत के उपासकों की स्थिति दयनीय है। इन्हें हीन भावना से देखा जाता है, समाज में कोई सम्मानजनक स्थान नहीं है। तब इन्होंने संगीत और संगीत के उपासकों की इस स्थिति को सुधारने का संकल्प लिया। भिन्न-भिन्न प्रांतों में जाकर संगीत सम्मेलन शुरू किए और आम जनमानस के हृदय में संगीत को लेकर एक उचित सम्मानजनक स्थान बनाना शुरू किया। वे इसमें सफल भी रहे। तदोपरांत इन्होंने संगीत को स्कूली शिक्षा के रूप में ढालने की ठानी और 5 मई 1901 ई. में सर्वप्रथम लाहौर में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की जहाँ इन्होंने नवोदित कलाकारों को निशुल्क शिक्षा एवं भोजन तथा वस्त्रादि अपने पास से देकर संगीत शिक्षण का संकल्प लिया। इसी बीच इनके पिता का देहावसान हो गया जिससे वह बहुत विचलित रहे। फिर भी सब स्थितियों को सहकर भी यह अपने पथ पर अग्रसर होते रहे। तदोपरांत इन्होंने 1908 ई. में (मुंबई) में गांधर्व महाविद्यालय की दूसरी शाखा की स्थापना की। वर्तमान में भारत के अनेक प्रांतों में गांधर्व महाविद्यालय की अनगिनत शाखाएँ सुचारू रूप से चल रही हैं। वह कांग्रेस अधिवेशन में निरंतर भाग लिया करते थे और राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम' का स्वयं संचालन भी करते थे। वह गणपति एवं राघव राजा राम के बड़े उपासक थे।

संगीत क्षेत्र में इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें *संगीत बालबोध*, *भारतीय संगीत लेखन पद्धति*, *संगीत तत्व दर्शक*, *अंकित अलंकार*, *राग प्रवेश*, *नारदीय शिक्षा सटीक*, *टप्पा गायन*, *महिला संगीत* व अन्य पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में एक पत्रिका *संगीतामृत* को भी प्रकाशित किया। इन्होंने एक स्वरलिपि पद्धति की रचना भी की जिसे आज विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में बंदिशों की स्वरलिपि (नोटेशन) लिखने के लिए इस पद्धति को अपनाया जाता है। यह पद्धति स्वर व ताल के सूक्ष्म प्रयोगों को दर्शाने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। संगीत मार्तंड पंडित ओमकारनाथ ठाकुर, वीआर देवधर, वी.ए. कशालकर, वी.एन. पटवर्धन, नारायण राव व्यास इत्यादि इनके प्रमुख शिष्यों में गिने जाते हैं।

21 अगस्त 1931 ई. में इनकी मृत्यु हो गई, लेकिन यह हमेशा के लिए संगीत की दुनिया में अमर हो गए। इनके इकलौते पुत्र दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर ने भी 35 वर्षों तक अपना जीवन संगीत को समर्पित किया, परंतु अल्पायु में ही उनका निधन हो गया।

© NCERT not to be republished

विनायकराव पटवर्धन

चित्र 9.8— विनायकराव पटवर्धन

पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के अनेक शिष्यों में पंडित विनायकराव पटवर्धन का नाम अग्रगण्य माना जाता है। वह एक महान गायक हुए हैं जिनका जन्म 22 जुलाई 1898 ई. में मिरज (महाराष्ट्र) में एक मराठी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका विनायक नाम पड़ने के पीछे कारण यह रहा कि जिस दिन वह पैदा हुए थे उस दिन गणेश चतुर्थी का दिन था। सन 1902 में इनके माता-पिता दोनों का देहांत हो गया था जिसकी वजह से इनका पालन-पोषण इनके चाचा ने किया था। 1905 ई. से इन्होंने अपने चाचा गुरुदेव पटवर्धन, जो पखावज वादक थे तथा दूसरे चाचा केशव राव पटवर्धन जो बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर परंपरा से थे, से सांगीतिक शिक्षा लेना प्रारंभ की। उसके बाद मिरज (महाराष्ट्र) के बादशाह गंगाधर पंत पटवर्धन की मदद से 16 रुपये महीने वज़ीफ़ा पाकर यह गांधर्व महाविद्यालय लाहौर चले गए। छह साल के कठोर परिश्रम के बाद पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य बनकर इन्होंने संगीत शिक्षा प्राप्त की और एक बड़े गायक के रूप में उभरकर आए। इन्होंने गुरु के आशीर्वाद से गांधर्व महाविद्यालय की विभिन्न शाखाओं में शिक्षण कार्य किया और अनेक संगीत सम्मेलनों में संगीत प्रस्तुत किया। साथ ही साथ आकाशवाणी पर अनेक कार्यक्रम प्रसारित करके खूब प्रसिद्धि पाई। इन्होंने गांधर्व नाटक मंडल में भी कुशलतापूर्वक प्रशंसनीय कार्य किया।

राग जयजयवंती इनका विशेष प्रिय राग था। ये ख्याल गायन के साथ-साथ तराना गाने में भी निपुण थे। जब भी यह गाते थे संगीत प्रेमियों के साथ-साथ साधारण जनमानस भी भाव विभोर हो जाया करते थे। इनके द्वारा लिखित पुस्तक *राग विज्ञान* जो सात भागों में उपलब्ध है, अत्यंत प्रसिद्ध है जिसके अंतर्गत स्वरलिपिबद्ध अनेक बंदिशें संग्रहीत हैं। पंडित विनायकराव पटवर्धन को 1965 ई. में संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप तथा 1972 ई. में भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित किया गया।

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक व प्रतिनिधि पंडित विनायकराव पटवर्धन का देहांत 23 अगस्त 1975 ई. को पुणे में हुआ।

बड़े गुलाम अली खाँ

उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ का जन्म पंजाब के मशहूर शहर लाहौर के पास स्थित गाँव कंसूर में 2 अप्रैल 1902 ई. में हुआ जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। इनके पिता का नाम उस्ताद अली बख्श खाँ था, जो एक प्रसिद्ध सारंगी वादक व गायक थे। पिता से इन्होंने सारंगी वादन सीखा तथा चाचा काले खाँ से गायन की बारीकियाँ सीखीं। 1938 ई. में इनका पहला

© NCERT not to be republished

चित्र 9.9— बड़े गुलाम अली खान

स्टेज प्रोग्राम कोलकाता में हुआ जिससे खाँ साहब को बहुप्रसिद्धि मिली।

इनका विवाह 1932 ई. में अली जीवाई के साथ हुआ जिनसे उन्हें मुनव्वर अली के रूप में पुत्र की प्राप्ति हुई। यह भी एक बड़े शास्त्रीय गायक बने। उस्ताद गुलाम अली खाँ के तीन छोटे भाई थे— बरकत अली उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, मुबारक अली उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ और अमान अली उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ। यह बहुत ही मिलनसार व सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। इनका स्वरों पर इतना नियंत्रण था कि कठिन से कठिन स्वरावलियों को भी बड़े ही चाव के साथ आसानी से प्रस्तुत कर दिया करते थे। इनके शरीर का गठन पहलवान जैसा था। वे लंबे-चौड़े थे और उन्हें बड़ी मूछें रखना बहुत पसंद था। इन्होंने ग्वालियर घराने के गायक सिंधी राव तथा पटियाला घराने के गायक आशिक अली खाँ साहब से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने असंख्य ख्याल व ठुमरियाँ गाईं— "याद पिया की आए कटे ना बिरहा की रात, आए ना बलमा क्या करूँ सजनी" इत्यादि। उन्होंने ठुमरी गायन में पंजाब की शैली को भी अपनाया जिसे वर्तमान समय में ठुमरी पंजाब अंग के नाम से जाना जाता है। इन्होंने देश-विदेश में विभिन्न कार्यक्रम देकर जनता का मन जीता।

सन 1961 में इन्हें लकवे की बीमारी ने जकड़ लिया जिससे इनके सामने आर्थिक संकट आ पड़ा। महाराष्ट्र सरकार ने इन्हें 5000 रूपयों की आर्थिक सहायता भी प्रदान की। उपचार के उपरांत खाँ साहब ने आकाशवाणी पर अपने अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए तथा जनमानस में एक उमंग व स्फूर्ति पैदा करते रहे। सन 1962 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार तथा 1962 ई. में ही भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण उपाधि से सम्मानित किया गया। 1968 ई. में फिर से लकवा का हमला हो जाने के कारण 25 अप्रैल 1968 ई. में खाँ साहब का हैदराबाद के बशीर बाग में निधन हो गया।

सुरश्री केसरबाई केरकर

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में केसरबाई केरकर का नाम बहुप्रचलित रहा है। यह उच्च कोटि की ख्याल गायिका थीं। केसरबाई केरकर का जन्म 13 जुलाई 1892 ई. को गोवा प्रांत के केरी नामक गाँव में एक संगीत परिवार में हुआ था। इन्होंने प्रारंभ में संगीत शिक्षा उस्ताद अब्दुल करीम खाँ से प्राप्त की थी। उसके बाद इन्होंने पंडित रामकृष्ण बुआ वजे, बरकतुल्लाह

© NCERT not to be republished

चित्र 9.10— केसरबाई केरकर

खान, पंडित भास्कर बुआ बाखले से भी संगीत शिक्षा प्राप्त की। इसके उपरांत 1920 ई. में जयपुर अतरौली घराने के उस्ताद अल्लादिया खाँ से शिक्षण प्राप्त करके इसी घराने की एक प्रसिद्ध कलाकार के रूप प्रसिद्ध हुई। इनकी गुणवत्ता में दीर्घ अंतराल तक साँस पर काबू बनाए रखना जो कि एक महिला के गायन के लिए असामान्य बात मानी जाती थी, श्रोताओं और संगीतकारों को हमेशा प्रभावित करती थी। इसके साथ ही आवाज़ का खुलापन, गायन में सशक्त स्वर का दानेदार प्रवाह इनके गायन की विशेषताएँ रहीं। इन्हें रिकॉर्डिंग या रेडियो पर गाना पसंद नहीं था फिर भी एक एलबम *हिज मास्टर्स वॉयस* के लिए इन्होंने गाया था। जटिल रागों में निपुणता प्राप्त करना जयपुर घराने की विशिष्टता रही है। अत: केसरबाई के लिए भी कान्हड़ा, सारंग, हिन्दोल-बहार, जौन-बहार आदि विशेष प्रिय व कौशल दर्शाने वाले राग थे। 1950 ई. के दशक के पूर्व में वह देवदासी परंपरा से अलग हो गई थीं और उस समय की एक प्रतिष्ठित और प्रख्यात कलाकार बनकर उभरी थीं। इन्हें सर्वप्रथम 1938 ई. में कोलकाता (कलकत्ता) में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में सर्वश्रेष्ठ गायिका के रूप में सम्मानित किया गया था। रविंद्र नाथ टैगोर को इनकी गायकी अत्यधिक पसंद थी। उन्हीं के परामर्श से 1978 ई. में केसरबाई को कोलकाता में संगीत प्रवीण सम्मान समिति द्वारा सुरश्री से सम्मानित किया गया था। जिसके कारण यह इनका उपनाम भी पड़ा। सन् 1965 में सार्वजनिक परिस्थितियों के कारण इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। इन्हें 1953 ई. में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 1969 ई. में पद्म भूषण और महाराष्ट्र राज्य द्वारा 1969 ई. में ही राजगायिका उपाधि से सम्मानित किया गया। इनका गायन केवल पृथ्वी पर ही नहीं गूँजता बल्कि नासा (नासा— एक अमेरिकन स्पेस एजेंसी) के अंतरिक्ष खोज यान वोयाजेर I के लिए *साउंडस ऑफ अर्थ* (Sounds of Earth) नामक एलबम में सन 1977 में इनका गायन संगृहीत किया गया था। बीथोवेन, मोज़ार्ट, बाख तथा भारत की केसरबाई केरकर द्वारा गाया भैरवी राग 'जात कहां हो अकेली गोरी' का प्रस्तुतीकरण इस ब्रह्मांड में गूँजता रहेगा।

इनकी विशेष शिष्या धोंडुबाई कुलकर्णी थी। इनके गृह नगर केरी में सुरश्री केसरबाई केरकर गर्ल्स हाई स्कूल भी चल रहा है। गोवा में प्रतिवर्ष केसरबाई केरकर स्मृति संगीत समारोह नामक महोत्सव का आयोजन भी किया जाता है तथा मुंबई में एनसीपीए द्वारा प्रतिवर्ष सुरश्री केसरबाई केरकर स्कॉलरशिप भी संगीत क्षेत्र में प्रदान की जाती है। 16 सितंबर 1970 ई. में इन्होंने मुंबई में ही अंतिम साँस ली।

© NCERT not to be republished

चित्र 9.11— पंडित विष्णु नारायण भातखंडे

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे का जन्म दिनांक 10 अगस्त 1960 ई. को बालकेश्वर, मुंबई में हुआ। अपने बचपन से ही उन्होंने संगीत में गायन और बाँसुरी में महारत हासिल की थी। बाद में उन्होंने सितार वादन की शिक्षा भी प्राप्त की। बी.ए. तथा एल.एल.बी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर पंडित भातखंडे जी ने कराची में वकालत प्रारंभ की। इन सबके बीच भी संगीत से उनका अटूट नाता बना रहा।

पंडित भातखंडे ने इस विचार से कि, "केवल मौखिक शिक्षण परंपरा के रूप में उपलब्ध होने के कारण प्राचीन बंदिशों का लोप होता जा रहा है", उन्होंने बंदिशों को संरक्षित एवं संग्रहित करने के विचार से एक स्वरलिपि का निर्माण किया। जिसके आधार पर वे उस्तादों की बंदिशों को सुनकर स्वरलिपिबद्ध कर लेते थे। 1909 ई. में उन्होंने *श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्* तथा *हिंदुस्तानी संगीत पद्धति* का प्रथम भाग प्रकाशित किया। तत्पश्चात स्वरचित लक्षण का एक संग्रह प्रकाशित कराया। संगीत प्रकाशन द्वारा प्रकाशित क्रमिक पुस्तकमालिका— भाग 1, 2, 3, 4, 5, 6 भी भातखंडे जी की पुस्तकें हैं जिनमें उन्होंने अनेक तत्कालीन प्रचलित ध्रुपद, धमार, ख्याल, लक्षणगीत तथा ठुमरी आदि गेयविधाओं की बंदिशों को स्वरलिपिबद्ध रूप में संकलित किया है। साथ ही रागों के विवरण तथा कुछ महत्वपूर्ण सांगीतिक तकनीकों की परिभाषाओं के साथ उनकी संक्षिप्त जानकारी भी दी है। उनके सद्प्रयासों से बड़ौदा में एक संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। पंडित भातखंडे के सहयोग से ही ग्वालियर नरेश ने 1918 ई. में माधव संगीत विद्यालय की स्थापना की। 1926 ई. में अनेक संगीत प्रेमियों के सहयोग से लखनऊ में *मैरिस कॉलेज ऑफ हिंदुस्तानी म्यूजिक* के नाम से एक शिक्षण संस्थान प्रारंभ हुआ जो आज भातखंडे संगीत संस्थान एवं विश्वविद्यालय के रूप में संचालित हो रहा है। संगीत विचारक, उद्धारक तथा संगीत के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देने वाली इस महान विभूति ने मुंबई में 1936 ई. में अपनी इहलीला समाप्त की।

उस्ताद नसीर मोहिनुद्दीन खाँ डागर एवं उस्ताद अमीनुद्दीन खाँ डागर

नसीरूद्दीन खाँ डागर के इन दोनों पुत्रों ने जुगलबंदी में गायन किया तथा जिस प्रकार एक समय अल्लाबंदे-जाकिरूद्दीन का नाम जुगलबंदी की गायकी में प्रसिद्ध था, ठीक उसी प्रकार इन्होंने गायकी से आसमान की बुलंदियों को छुआ। इन्होंने आर्थिक परेशानियों को एक तरफ करके ध्रुपद की विकास यात्रा में योगदान दिया। ध्रुपद रूपी इमारत को इन दोनों भाइयों ने अपने दमखम पर खूबसूरती से सँवारा। देश-विदेश में ध्रुपद गायकी की विजय पताका को फहराया।

© NCERT not to be republished

सन 1921 में उस्ताद मोहिनुद्दीन का जन्म हुआ तथा 1923 ई. में उस्ताद अमीनुरूद्दीन खाँ का जन्म हुआ। दोनों भाइयों ने अपनी शिक्षा अपने पिता उस्ताद नसीरूद्दीन डागर से प्राप्त की तथा इसके अतिरिक्त अपने चाचा रहीमुद्दीन खाँ डागर और मामा उस्ताद रियाजुद्दीन खाँ डागर से प्राप्त की। इनके पिता इंदौर के राज गायक थे। राज गायक होने के नाते उनके परिवार के पास सभी आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध थीं। उनके बच्चे भी (अमुनुद्दीन-मोहिउद्दीन) भी राजकुमार की तरह रहते थे। 1936 ई. में पिता नसीरूद्दीन खाँ डागर की मृत्यु के पश्चात वे तांगे में सामान लादकर अपने मामा उस्ताद रियाजुद्दीन खाँ डागर के पास पहुँचे। रियाजुद्दीन खाँ साहब अपने उसूलों के बड़े पक्के थे। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा और देखूँगा कि अपने पिता से क्या सीखकर आए हो। जब उनकी गायकी को सुना तो वे प्रसन्न हो गए और खुद तांगे से सामान उतारकर ले गए। अपने मामा के साथ बड़े ही कठिन नियमों का निर्वाह करते हुए इन दोनों भाइयों ने अपनी गायकी को निखारा।

दोनों भाई सदा विनम्रता व सादगी से ही रहे। देश-विदेश में कई स्थानों की यात्रा करके ध्रुपद को आसमान की बुलंदियों पर पहुँचाया। दिल्ली में दोनों भाई रेडियो स्टेशन कार्यक्रम देने हेतु जाते थे, उस समय आकाशवाणी के निदेशक वी.वी. केसकर थे। उन्होंने डागर बंधुओं को आकाशवाणी निदेशक बनने का अवसर तक दिया, परंतु ये दोनों ठहरे ध्रुपद रूपी ईश्वर साधक, दोनों ने उसे अस्वीकार कर दिया।

दोनों भाइयों की गायकी बहुत मधुर व श्रोताओं को प्रभावित तथा मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी। गायकी के कण-कण में इतना माधुर्य होता था कि सुनने वाले के हृदय की गहराइयों को छू जाता था। दोनों डागर बंधुओं की आवाज़ जैसे ध्रुपद गायकी के लिए ही बनी हो। आलापचारी में इन दोनों के सामान उस वक्त कोई भी नहीं था। दोनों ध्रुपद गायकी को जाति और धर्म से परे मानते थे।

ध्रुपद में आलाप— बढ़त को वे इस तरह समझाते— मंदिरों में विग्रह का जिस प्रकार नख-शिख शृंगार करते हैं, वैसे ही आलापों में क्रमबद्ध स्वरों से शृंगार किया जाता है। वे आलापों में घंटा, शंख, वीणा एवं डमरू जैसे वाद्यों की ध्वनि की मंदिरों में आरती के समान कल्पना करते थे। इन्होंने अपने गायन में संस्कृत के श्लोकों का भी प्रयोग किया तथा ध्रुपद के सही स्वरूप को उजागर किया। इन्होंने पंडित बिरजू महाराज के बैले में भी संगीत दिया था। श्रीराम भारतीय कला केंद्र में दोनों भाई 1950–60 ई. के दौरान कार्यरत रहे। इनके साथ शंभू महाराज, बिरजू महाराज, मुश्ताक हुसैन खाँ, उस्ताद बिलायत हुसैन खाँ (आगरा वाले) सरीखे कलाकार भी सम्मिलित रहे। इन दोनों भाइयों के कई कार्यक्रम दूरदर्शन व आकाशवाणी पर प्रसारित होते रहे। इन्होंने रूस, जापान, अमेरिका, इटली व जर्मनी आदि कई देशों की यात्रा की। सन 1961 में भारत की तरफ से '*ईस्ट वेस्ट म्यूजिक इन काउंटर*' में टोकियो गए। टोकियो में

© NCERT not to be republished

उन्होंने 30 संगीत सभाओं में भाग लिया। 1964 में उन्हें बर्लिन में संगीत के अंतर्राष्ट्रीय संस्थान से बुलावा आया, वहाँ जाकर उन्होंने ध्रुपद गायकी को नाम और प्रसिद्धि दिलाई।

दोनों में इतना अधिक प्रेम था कि एक भाई ने शादी की और दूसरे ने नहीं की। उस्ताद अमीमुद्दीन का कहना था कि, 'अगर मैंने शादी की तो मेरी भाभी और भाई के साथ मेरा इतना प्रेम नहीं रहेगा।'

सन 1940 से 1965 तक इन्होंने कठिन संघर्ष से ध्रुपद को नाम व प्रतिष्ठा दिलाई। अपने परिश्रम से इन्होंने डागर घराने को विश्व प्रसिद्ध कर दिया। 24 मई 1966 में नसीर मोइनुद्दीन खाँ डागर का अल्पायु में ही निधन हो गया। संगीत जगत को एक गहरा आघात लगा, साथ ही साथ राम-लक्ष्मण कहलाने वाले भाइयों की जुगलबंदी टूट गई। अपने भ्राता की मृत्यु का अमीनुद्दीन खाँ साहब को अत्यंत आघात लगा। परंतु इस ध्रुपद के सेवक ने धैर्य नहीं खोया, जिस कार्य को करने का ज़िम्मा अपने भाई के साथ उठाया था, उसी कार्य को अब उन्हें अकेले ही करना था। उन्होंने कलकत्ता में 'गुरुकुल आश्रम' के रूप में ध्रुपद शिक्षा केंद्र खोला।

दिल्ली संगीत नाटक अकादमी में उन्होंने कार्यक्रम किया। मोइनुद्दीन खाँ साहब की मृत्यु के पश्चात यह पहला कार्यक्रम था। अपने भ्राता की तस्वीर को सामने रखकर उन्होंने गाया और गायन के पश्चात वे भावुक हो उठे। ताउम्र वे ध्रुपद की सेवा करते रहे। उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए उन्हें 1985 में 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' 1986 में 'पद्म भूषण' एवं 1988 में बनारस महाराज ट्रस्ट द्वारा 'स्वाति तिरुनाल पुरस्कार' मिला। 1990 में मध्य प्रदेश सरकार ने उन्हें 'तानसेन पुरस्कार' से सम्मानित किया। उन्होंने कई प्रदर्शन दिए और यूनेस्को के अभिलेखागार के लिए रिकॉर्ड किए जाने वाले पहले भारतीय गायक बने।

"अड़ाना, दरबारी, तोडी, बिहाग, सिंदूरा, मालकौंस, खमाजी दुर्गा, पूरिया, कोमल ऋषभ, आसावरी एवं ललित आदि इनके प्रिय राग थे। उनके इन रागों की विद्वता में भारतीय संगीत का समस्त राग संसार समाहित था।"

संगीत जगत में सेवाएँ देते-देते ही एक दिन यह महान सितारा भी अस्त हो गया। इनका देहांत 28 दिसंबर, 2000 में हो गया और संगीत के संसार में अपनी यादें, ध्रुपद को दी गई महान सेवाओं के रूप में छोड़ गए। ध्रुपद की इन्हीं सेवाओं के लिए इनके अन्य दोनों भाई उस्ताद नासिर ज़हीरुद्दीन खाँ डागर व नसीर फैयाजुद्दीन खाँ डागर भी इन्हीं की भाँति जुगलबंदी में ही गाया करते थे।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. उस्ताद निसार हुसैन का जन्म कब हुआ? ये किस दरबार के संगीतज्ञ रहे?
2. थिरकवा नाम के पीछे क्या दिलचस्प कहानी है?
3. उस्ताद अहमद जान थिरकवा का संबंध किन घरानों से था?
4. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने 15 अगस्त 1947 ई. को कौन-सा कार्यक्रम प्रस्तुत किया था?
5. पंडित कंठे महाराज के तबला वादन पर प्रकाश डालिए?
6. उस्ताद निसार हुसैन खाँ किस गायन शैली में पारंगत थे? भारत सरकार ने कब और किन सम्मानों से उन्हें नवाज़ा?
7. स्वामी पागल दास ने 18 साल की उम्र से किस तरह का जीवन बिताया?
8. गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत निम्नलिखित कलाकारों के गुरु कौन रहे?
   (क) उस्ताद अहमद जान थिरकवा
   (ख) उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ
   (ग) पंडित कुमार गंधर्व
9. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को कितने तरह के सम्मान प्राप्त हुए?
10. पंडित कुमार गंधर्व का असली नाम क्या था?
11. बारह साल की उम्र तक पंडित कुमार गंधर्व ने किस तरह संगीत से अपना नाता जोड़ा था?
12. पंडित कुमार गंधर्व ने जिन रागों की रचना की थी उनके बारे में बताइए।
13. पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर की पुस्तकों पर प्रकाश डालिए।
14. संगीत का सर्वप्रथम विद्यालय कहाँ, कैसे और किसने स्थापित किया?
15. पंडित विनायक राव पटवर्धन का जन्म कब हुआ?
16. पंडित विनायक राव पटवर्धन के जीवन पर 100 शब्दों में एक लेख लिखिए।
17. उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ ने अपने गायन में किन घराने की शैलियों को अपनाया?
18. उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ की सांगीतिक उपलब्धियों के बारे में लिखिए।
19. नासा से केसरबाई केरकर का क्या संबंध था?
20. सुश्री केसरबाई केरकर को किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया?
21. पंडित विष्णु नारायण भातखंडे का संगीत की प्राचीन बंदिशों के संरक्षण में कैसा योगदान रहा?

© NCERT not to be republished

22. पंडित भातखंडे जी के निरीक्षण में किन विद्यालयों की स्थापना हुई?
23. सुश्री केसरबाई केरकर ने किस घराने में संगीत की शिक्षा पाई?
24. सुश्री केसरबाई की जीवन आवृत्ति पर परियोजना बनाइए।
25. पंडित कंठे महाराज के कुछ शिष्यों के नाम बताइए।

सुमेलित कीजिए–

अ	आ
1. स्वामी राम शंकर	(क) कर्नाटक राज्य, बेलगाँव
2. पंडित कंठे महाराज	(ख) लाहौर के पास गाँव
3. स्वामी पागल दास	(ग) पागल दास केसुर
4. कुमार गंधर्व	(घ) शिष्य-समता प्रसाद, गुदई महाराज, किशन महाराज
5. बड़े गुलाम अली खान	(ङ) तबला कौमुदी

© NCERT not to be republished